क्या चिन्तन निष्कर्षों से आरम्भ होता है?

झील के पार पहाड़ियाँ बहुत सुन्दर थीं और उनके परे हिमाच्छादित पहाड़ खड़े थे। दिन-भर बारिश होती रही थी, किन्तु अब एक अप्रत्याशित चमत्कार की तरह आकाश अचानक खुल गया था और हर चीज जीवन्त, उल्लासमयी और शान्त दिखायी दे रही थी। फूलों के पीले, लाल और गहरे बैगनी रंग बिखर आए थे और उन पर बारिश की बूंदें कीमती मोतियों की तरह चमचमा रही थीं। बहुत ही प्यारी शाम थी, आलोक और वैभव से भरपूर। लोग सड़क पर चले आए थे और झील के किनारे बच्चे खिलखिलाते हुए हँस रहे थे। समूची रेल-पेल और कोलाहल के बीच शाम का जादुई सौन्दर्य और विचित्र सी सर्वव्यापी शान्ति देखते ही बनती थी।

हम कई लोग झील के सामने वाली लंबी बेंच पर बैठे थे। एक आदमी तनिक ऊँची आवाज में बोल रहा था; वह जो कुछ अपने पड़ोसी से कह रहा था, उसे न सुन पाना असंभव था। ''काश, ऐसी शाम मैं इस शोर और कोलाहल से कहीं दूर होता, लेकिन अपनी नौकरी की खातिर यहाँ फँसा हूँ जो मुझे जरा नहीं भाती।'' लोग हंसों, बत्तखों और इक्के-दुक्के (सी-गल्स) को आहार दे रहे थे। हंस एकदम स्वच्छ सफेद और शालीन थे। अब पानी में कोई हलचल नहीं थी और झील के पार की पहाड़ियां लगभग स्याह पड़ गयी थी, लेकिन पहाड़ियों के परे जो पर्वत थे, वे डूबते सूरज की किरणों में सुलग रहे थे और उनके पीछे बादल अपनी उज्ज्वल छटा में आवेशपूर्ण एवं जीवन्त (उफनते से) दिखायी देते थे।

''मुझे नहीं मालूम मैं आपको ठीक से समझा हूँ या नहीं'' आगन्तुक ने कहा ''जब आप यह कहते हैं कि ज्ञान को अलग हटा कर ही सत्य को समझा जा सकता है'', वह पढ़े-लिखे बुजुर्ग सज्जन थे, जिन्होंने अनेक देशों की यात्रा की थी। उन्होंने बताया कि वह एक वर्ष तक किसी मठ (मॉनेस्ट्री) में भी रहे थे, जहाज पर काम करने के कारण दुनिया के अनेक बन्दरगाहों में घूमे थे तथा पैसा और ज्ञान दोनों ही अर्जित किया था। ''मेरा मतलब सिर्फ किताबी ज्ञान से नहीं है'' उन्होंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा ''मेरा मतलब ऐसे ज्ञान से है, जिसे मनुष्य ने संग्रहीत तो किया है, किन्तु कागज पर दर्ज नहीं किया, ज्ञान की एक ऐसी रहस्यपूर्ण परंपरा जो शास्त्रों और पोथियों से परे की चीज है। मैंने थोड़ा बहुत गुह्य विद्याओं का भी अभ्यास किया है, किन्तु वे मुझे हमेशा मूढ़तापूर्ण और छिछली जान पड़ी हैं। एक अच्छी खुर्दबीन उस आदमी की अतीन्द्रीय दृष्टि से कहीं ज्यादा उपयोगी है जो अधिभौतिक वस्तुओं को देखने में समर्थ है। मैंने अनेक महान इतिहासकारों के सिद्धान्तों, उनकी अन्तर्दृष्टियों का अध्ययन किया है किन्तु मुझे लगता है कि जिस व्यक्ति का आले दर्जे का दिमाग हो और जिसमें ज्ञान संग्रहीत करने की क्षमता है वह दुनिया का बहुत भला कर सकता है। मैं जानता हूँ यह फैशन की बात नहीं है, लेकिन मेरे भीतर कहीं दुनिया को सुधारने की लालसा छिपी है और ज्ञान-संग्रह मेरे जीवन की उत्कट और एकमात्र धुन है। मैं अपने को अनेक अर्थों में धुन का पक्का इन्सान मानता हूँ और अब मुझ पर जानने की धुन सवार है। अभी कुछ दिन पहले मैं अपकी कोई चीज पढ़ रहा था जिसने मुझे अचरज में डाल दिया, जब आप कहते हैं कि ज्ञान से मुक्ति अनिवार्य है।

तभी मैंने निर्णय लिया, कि मैं आपसे मिलँूगा, एक अनुयायी के नाते नहीं बल्कि एक जिज्ञासु के नाते।''

किसी दूसरे व्यक्ति का अनुकरण करना, चाहे वह कितना ही विद्वान और श्रेष्ठ क्यों न हो, अपने समूचे बोध को कुंठित करना है, है कि नहीं?

''फिर हम मुक्त भाव से परस्पर सम्मान के साथ एक दूसरे से बातचीत कर सकते हैं।''

क्या मैं पूछ सकता हूँ , ज्ञान से आपका क्या मतलब है?

''हाँ , शुरुआत के लिए यह अच्छा प्रश्न है। ज्ञान वह सब कुछ है, जो मनुष्य ने अपने अनुभव से सीखा है, जिसे उसने अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों - मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दोनो ही में, अनेक शताब्दियों की गहन पीड़ा और संघर्ष द्वारा संग्रहीत किया है। जिस प्रकार बड़े से बड़ा इतिहासकार इतिहास का अर्थ अपनी शिक्षा और मनःस्थिति के अनुसार लगाता है, उसी तरह मेरे जैसा एक साधारण विद्वान ज्ञान को अच्छे या बुरे कर्म में कार्यान्वित कर सकता है, फिलहाल यद्यपि हम कर्म की बात नहीं कर रहे हैं, यह अनिवार्य रूप से ज्ञान के साथ जुड़ा है। यही मनुष्य ने विचार द्वारा, ध्यान द्वारा, दुःख द्वारा सीखा या अनुभूत किया है। ज्ञान का भंडार विराट है, वह सिर्फ पुस्तकों में ही दर्ज नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की वैयक्तिक, सामूहिक अथवा जातीय चेतना में भी वास करता है। जिस तरह पश्चिमी मनुष्य की चेतना की जड़ में मुख्यतः भौतिक दुनिया की प्राविधिक विद्या, वैज्ञानिक और चिकित्सा संबंधी सूचनाएं रहती हैं उसी तरह प्राच्य मनुष्य की चेतना में गैर-दुनियावी चीजों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशीलता रहती है। यह सब ज्ञान है, जो न केवल जाने हुए सत्यों को अपने में समेटता है, बल्कि उन सत्यों को भी, जिन्हें दिन-प्रतिदिन खोजा जा रहा है। ज्ञान एक शाश्वत, योगात्मक प्रक्रिया है, जिसका कोई अन्त नहीं इसलिये यह वह अमरत्व हो सकता है जिसकी मनुष्य को तलाश है। अतः मैं आपकी बात नहीं समझ पाता, जब आप कहते हैं कि सारा ज्ञान हटा कर ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है।''

ज्ञान और समझ के बीच विभाजन नकली है, वास्तव में इस तरह का कोई विभाजन नहीं है। यह भ्रम है। किन्तु इस विभाजन से छुटकारा पाने का अर्थ है इन दोनों के अन्तर का बोध होना, जिसके लिये पहले हमें यह पता चलाना आवश्यक है, कि चिन्तन का उच्चतम रूप क्या है, वरना हम उलझन में पड़ जाएँगे।

क्या चिन्तन निष्कर्ष से शुरू होता है? क्या चिन्तन एक निष्कर्ष से दूसरे निष्कर्ष तक चलने की प्रक्रिया है? क्या चिन्तन संभव है यदि उसका स्वरूप निश्चयात्मक ('पॉजिटिव') है? क्या उच्चतम चिन्ताओं का स्वरूप नकारात्मक नहीं होता? क्या समूचा ज्ञान परिभाषाओं निष्कर्षों और निश्चयात्मक धारणाओं का संग्रह मात्र नहीं है

– निश्चयात्मक (पाजिटिव) चिन्तन, जो अनुभव पर आधारित होता है हमेशा बीते का परिणाम है और इसलिए ऐसा चिन्तन सर्वथा नये को खोजने में असमर्थ है।

''आप कहते हैं कि ज्ञान हमेशा उसका होता है जो बीत चुका है अतः जो विचार अतीत से उपजता है वह अनिवार्यतः उसके बोध को धुंधला कर देता है, जिसे हम सत्य कह सकते हैं। किन्तु स्मृति के रूप में अतीत के बिना हम उस चीज को भी नहीं पहचान सकते, जिसे हम सहमति से कुर्सी कहते हैं। कुर्सी शब्द उस निष्कर्ष को दरशाता है जिसे सबकी सहमति प्राप्त है। मनुष्यों के बीच सारा संप्रेषण समाप्त हो जाएगा, यदि इन निष्कर्षों को यथावत् स्वीकार न किया जाए। हमारा अधिकांश चिन्तन निष्कर्षों, परंपराओं (रूढ़ियों) , दूसरों के अनुभवों पर आधारित होता है। इस तरह के अनिवार्य और सर्वविदित निष्कर्षों के बिना हमारा जीना दुश्वार हो जाएगा। निश्चय ही आपका मतलब यह तो नहीं है कि हम समस्त निष्कर्षों, स्मृतियों, परंपराओं (रूढ़ियों) से किनारा कर लें?

वह जो रूढ़िगत है, हमें अनिवार्यतः एक औसत मामूली से जीवन की ओर ले जाता है। जो मस्तिष्क रूढ़िग्रस्त है, कभी सत्य से साक्षात्कार नहीं कर सकता – वह रूढ़ि चाहे एक दिन पुरानी हो या हजार वर्षों से चली आती हो। जाहिर है, एक इंजीनियर के लिए यह एक बेतुकी बात होगी कि वह अपने इंजीनियरी ज्ञान को भुला दे जिसे उसने हजार लोगों के अध्ययन अनुभवों के द्वारा अर्जित किया है। इसी तरह यह भी एक मानसिक रोग की निशानी ही माना जाएगा यदि कोई उस स्थान की स्मृति को ही मिटाना चाहे जहाँ उसने जीवन–यापन किया है। किन्तु केवल तथ्यों को इकट्ठा करने से ही जीवन का बोध नहीं आता। किसी चीज का ज्ञान ('नॉलेज') होना एक बात है, उसका बोध (अन्डरस्टैंडिंग) होना अलग बात है। ज्ञान से बोध उत्पन्न नहीं होता, किन्तु बोध ज्ञान को समृद्ध कर सकता है और ज्ञान से बोध कार्यान्वित हो सकता है।

''ज्ञान जरूरी चीज है और उसे यह दृष्टि से देखना उचित नहीं। विधिवत् ज्ञान के बिना आधुनिक शल्य–विद्या और इस तरह के सैकड़ों चमत्कार असंभव होते।''

हम यहाँ ज्ञान की निंदा–प्रशंसा नहीं कर रहे, समस्या को पूरी समग्रता से समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। ज्ञान जीवन का एक अंशमात्र है, पूरा समग्र जीवन वह नहीं है, और जब वह अंश पूरे जीवन पर हावी हो जाता है, जिसका कि आज भय है, तब हमारा जीवन एक सतही, नीरस दैनिक चर्या में बदल जाता है, जिससे बचने के लिए मनुष्य हर प्रकार के अन्धविश्वास एवं मनबहलाव के साधन खोज लेता है, जिसके अपने घातक परिणाम होते हैं। महज ज्ञान, वह चाहे कितना ही व्यापक क्यों न हो और कितनी ही चतुराई से संयोजित क्यों न किया गया हो, मानवीय समस्याओं को नहीं सुलझा सकता। यदि हम ज्ञान से यह आशा करेंगे, तो हमारे हाथ सिर्फ हताशा और पीड़ा ही लगेगी। उसके लिए किसी गहरे समाधान की जरूरत है। हम यह तो जान सकते है कि घृणा करना निरर्थक है किन्तु घृणा से मुक्त होना और बात है। प्रेम ज्ञान के दायरे में नहीं आता।

जैसा कि मैंने पहले कहा था, निश्चयात्मक चिन्तन वास्तव में चिन्तन है ही नहीं। वह तो जो अब तक सोचा गया है उसका महज एक संशोधित संस्करण है। अनेक दबावों और विवशताओं द्वारा समय-समय पर उसका बाह्य रूप बदल सकता है, किन्तु मूल में वह रूढ़िग्रस्त ही रहता है। निश्चयात्मक चिन्तन अनुसरण की प्रक्रिया है और वह मन जो अनुसरण ('कन्फार्म) करता है, कभी नये की खोज कर सकने की स्थिति में नहीं होता।

''किन्तु क्या निश्चयात्मक चिन्तन को नकारा जा सकता है, क्या मानव अस्तित्व के एक खास स्तर पर उसका होना जरूरी नहीं है?''

निःसंदेह, लेकिन पूर्ण समस्या वह नहीं है। हम यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या सत्य को समझने में ज्ञान बाधा तो नहीं बन जाता? ज्ञान का होना जरूरी है क्योंकि उसके बिना जीवन के कतिपय क्षेत्रों में हमें पुनः सब कुछ शुरू से करना पड़ेगा। यह बात तो काफी सरल और स्पष्ट है। किन्तु संग्रहीत ज्ञान का भंडार, वह चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, क्या हमें सत्य को समझने में मदद कर सकेगा?

''सत्य क्या है? क्या वह सामान्य भूमि है जिस पर सब चल सकते हैं अथवा वह कोई मनोगत वैयक्तिक अनुभव है?''

आप चाहे उसे किसी नाम से ही क्यों न पुकारें, सत्य हमेशा नवीन, जीवन्त होता है। नवीन और जीवन्त शब्द केवल एक ऐसी स्थिति को संप्रेषित करते हैं जो स्थिर नहीं है, मृत नहीं है, मनुष्य के मन में कोई जड़ बिन्दु नहीं है। सत्य की क्षण-प्रतिक्षण नयी खोज करनी पड़ती है, वह कोई ऐसा अनुभव नहीं है जिसे दोहराया जा सके, उसमें निरंतरता (कन्टिन्यूटी) नहीं है, वह काल से परे है, सत्य के अस्तित्व के लिये एक और अनेक के बीच का भेद समाप्त होना आवश्यक है। यह कोई ऐसी स्थिति नहीं है जिसे उपलब्ध किया जा सके, न ही ऐसा लक्ष्य बिन्दु है जिसकी ओर मन को अग्रसर, विकसित किया जा सके। यदि सत्य की हमारी परिकल्पना कुछ ऐसी है कि वह कोई वस्तु है जिसे प्राप्त किया जा सकता है तब तो ज्ञान का संवर्धन और स्मृति-संग्रह आवश्यक बन जाता है, और इससे उत्पन्न होते हैं गुरु तथा उसका अनुगामी एक वह जो जानता है और दूसरा जो नहीं जानता।

''तब आप गुरु-शिष्य परंपरा के भी विरुद्ध हैं?''

सवाल किसी के विरुद्ध होने का नहीं है, बल्कि इस बात के बोध का है कि अनुसरण-प्रवृत्ति, जो आत्म-सुरक्षा की इच्छा और उसके खो जाने के भय के साथ जुड़ी है, हमें उसका अनुभव नहीं होने देती जो कालातीत है।

''मुझे लगता है मैं आपकी बात समझ रहा हूँ । किन्तु हमने जो संग्रहीत किया है उसे त्याग देना क्या अत्यन्त कठिन नहीं है? क्या यह संभव भी है?''

कुछ पाने के लिए कुछ त्याग देना कोई त्याग नहीं है। मिथ्या को मिथ्या की तरह देखना, मिथ्या में जो सत्य है उसे देखना और सत्य को सत्य की तरह देखना यही मन को मुक्ति देता है।

कमेन्ट्र ीज ऑन लिविंग, सीरिज–३
अनुवाद : निर्मल वर्मा